महामहिम आचार्य

[१] पूज्य श्री ज्ञानमलजी महाराज

महामनस्वी आचार्यश्री ज्ञानमलजी महाराज का व्यक्तित्व विराट था। उनका तेजस्वी व्यक्तित्व जन-जन के लिए प्रेरणा-स्रोत था। उन्होंने अपने जीवन का ही निर्माण नहीं किया किन्तु अनेकों व्यक्तियों का भी निर्माण किया। उनके जीवन की समताओं को पल्लवित, पुष्पित और फलित होने का सुअवसर प्रदान किया। जीवन का निर्माण वही व्यक्ति कर सकता है जिसके हृदय में सद्भावना हो, स्नेह का सागर लहराता हो। आचार्य प्रवर ज्ञानमल जी महाराज का मानस जहाँ कुसुम-सा कोमल था वहाँ अनुशासन की दृष्टि से वज्र से भी अधिक कठोर था। स्नेह-सहानुभूतियुक्त अनुशासन ही निर्माण में सहायक होता है।

आचार्यश्री ज्ञानमल जी महाराज का जन्म राजस्थान के सेतरावा ग्राम में हुआ था। आपके पूज्य पिताश्री का नाम जोरावरमलजी गोलेछा और माता का नाम मानदेवी था। ओसवाल वंश और गोलेछा जाति थी। वि० संवत् १८६० की पौष कृष्णा छठ मंगलवार को आपका जन्म हुआ। जन्म के पूर्व माता ने स्वप्न में एक प्रकाशपुञ्ज को अपनी ओर आते हुए देखा और उस प्रकाशपुञ्ज में से एक आवाज आयी—माँ, मैं तुम्हारे पास आ रहा हूँ। माता मानदेवी ने कहा—जरूर आओ, मैं तुम्हारा स्वागत करती हूँ। मानदेवी ने प्रातः अपने पति जोरावरमल जी से स्वप्न की बात कही कि आज मुझे इस प्रकार का श्रेष्ठ स्वप्न आया है। जोरावरमलजी ने प्रसन्नता से कहा—तुम्हारे पुत्र होगा, प्रकाशपुञ्ज ज्ञान का प्रतीक है। लगता है तुम्हारा पुत्र लक्ष्मी-पुत्र के साथ सरस्वती-पुत्र भी बनेगा और वह हमारे कुल के नाम को रोशन करेगा।

सवा नौ मास पूर्ण होने पर बालक का जन्म हुआ। जोरावरमलजी ने ज्योतिषी से उसकी कुण्डली बनवाई। कुण्डली के आधार पर ज्योतिषी ने कहा—यह बालक योगीराज बनेगा। यह बहुत ही भाग्यशाली है, किन्तु तुम्हारे घर पर नहीं रहेगा। जिसने भी बालक को देखा वह हर्ष से नाच उठा। उस बालक का नाम ज्ञानमल रखा गया।

वि० संवत् १८६६ में आचार्यप्रवर जीतमलजी महाराज अपने शिष्यों के साथ विहार करते हुए सेतरावा पधारे। आचार्यप्रवर के पावन प्रवचन को सुनकर बालक ज्ञानमल के अन्तर्मानस में वैराग्यांकुर उद्बुद्ध हुआ। उसने अपने माता-पिता से दीक्षा की अनुमति माँगी। माता-पिता ने विविध उदाहरण देकर संयम-साधना की दुष्करता बताकर और संसार के सुखों का प्रलोभन देकर उसके वैराग्य के रंग को मिटाने का प्रयास किया, किन्तु उसका वैराग्य-रंग हल्दी का रंग नहीं था जो जरा-से प्रलोभनों की धूप लगते ही धुल जाता। बालक ज्ञानमल की उत्कृष्ट वैराग्य भावना को देखकर माता-पिता को अनुमति देनी पड़ी और संवत् १८६६ पौष कृष्णा तीज बुधवार को झाला मण्डप, जो जोधपुर के सन्निकट है, वहाँ हजारों मनुष्यों की उपस्थिति में दीक्षा की विधि सम्पन्न हुई। दीक्षा देने वाले थे आचार्य अमरसिंहजी महाराज के चतुर्थ पट्टधर आचार्य जीतमलजी महाराज और दीक्षित होने वाले थे ज्ञानमलजी।

मुनि ज्ञानमलजी में विनय और विवेक का मणि-कांचन योग था। उनकी बुद्धि बहुत ही प्रखर थी। साथ ही चारित्र की अनुपालना में भी वे अत्यधिक जागरूक थे। उनकी विशेषताओं ने आचार्यश्री को आकर्षित किया। आचार्यश्री ने आगम ग्रन्थों का अध्ययन कराया, लिपि-कौशल सिखाया, और साथ ही अन्य तत्त्वों का भी परिज्ञान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कराया। आप बहुत ही शान्त, दान्त और गम्भीर प्रकृति के सन्तरत्न थे। अन्त में आचार्य जीतमलजी महाराज ने आपको अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। जब वि० संवत् १९१२ में आचार्य जीतमलजी महाराज का स्वर्गवास हो गया तब शासन की बागडोर आपके हाथ में आयी। आपने आचार्यकाल में राजस्थान, मध्यप्रदेश के विविध अंचलों में विचरण कर धर्म की प्रभावना की।

आचार्यप्रवर का वि० संवत् १९३० में चातुर्मास जालोर में था। प्रतिदिन आचार्यश्री के प्रभावशाली प्रवचन होते, जैन संस्कृति का महान् पर्व पर्युषण सानन्द सम्पन्न हुआ। आचार्यश्री ने चतुर्विध संघ से प्रातःकाल क्षमायाचना की और स्वयं एक पट्ट पर पद्मासन की मुद्रा में विराजकर भक्तामर स्तोत्र का पाठ किया और "अरिहन्ते सरणं पवज्जामि। सिद्धे सरणं पवज्जामि। साहू सरणं पवज्जामि। केवलिण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि" का उच्चारण करते हुए स्वर्गस्थ हो गये।

आचार्यप्रवर का एकाएक स्वर्गवास समाज के लिए एक चिन्ता का विषय था, किन्तु आपश्री के योग्यतम शिष्य पूनमचन्दजी थे। उन्हें आपके पट्ट पर आसीन किया गया। आचार्यप्रवर के द्वारा लिखे गये अनेक ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ ज्ञानभण्डारों में हैं। आपकी लिपि चित्ताकर्षक थी। आपने मौलिक ग्रन्थों का सृजन भी किया होगा, किन्तु वे ग्रन्थ मुझे प्राप्त नहीं हुए।

[२] आचार्यश्री पूनमचन्दजी महाराज

महापुरुषों के जीवन में कुछ ऐसी स्वाभाविक विशेषताएँ होती हैं जो जन-मानस को एक अभिनव प्रेरणा और आलोक प्रदान करती हैं। उनका जीवन जन-जन के लिए एक वरेण्य वरदान सदृश होता है। महामनस्वी प्रतिभा-मूर्ति आचार्यश्री पूनमचन्दजी महाराज इसी कोटि के महामानव थे। उनके जीवन में अध्यात्म की ज्योत्स्ना, साधना की आभा और ज्ञान की ज्योति सर्वत्र अनुस्यूत थी। उनकी चिन्तन धारा सत्त्वोन्मुखी थी। ये अध्यात्म वैभव के धनी महापुरुष थे। वे स्वयं प्रकाशपुञ्ज थे। उन्होंने आसपास के वातावरण को भी प्रकाशमय बनाया। वे पारदर्शी स्फटिक थे। उनकी स्वच्छता में प्रत्येक व्यक्ति अपना प्रतिबिम्ब देख सकता था।

आपश्री का जन्म राजस्थान के सुप्रसिद्ध नगर जालोर में हुआ था। आपके पिताश्री का नाम 'ऊमजी' था और माता का नाम फूलादेवी। आपका वंश ओसवाल और गोत्र राय गान्धी था। वि० संवत् १८९२ की मार्गशीर्ष शुक्ला नवमी शनिवार के दिन आपका जन्म हुआ था। आपका प्रारम्भिक अध्ययन जालोर में प्रारम्भ हुआ। आचार्यप्रवर ज्ञानमलजी महाराज के पावन उपदेश को श्रवण कर ग्यारह वर्ष की लघुवय में आपके अन्तर्मानस में वैराग्य भावना जागृत हुई। आपकी ज्येष्ठ भगिनी तुलसाजी के मन में तो पहले से ही दीक्षा की भावना थी और आचार्यश्री के उपदेश से उसकी भावना अधिक बलवती हो गयी। आप दोनों ने पूज्य पिता से दीक्षा के लिए अनुमति चाही। किन्तु पूज्य पिताजी ने साधना की अतिदुष्करता बताकर पहले दीक्षा लेने की अनुमति नहीं दी, किन्तु अन्त में पुत्र-पुत्री के अत्यधिक आग्रह को देखकर पिता ने अनुमति दे दी।

पूनमचन्दजी के चाचा का लड़का जो जालोर में ही कोतवाल था, जब उसने भाई-बहन की दीक्षा की बात सुनी तो समझाने का प्रयास किया। जब आपको पूर्ण रूप से दीक्षा के लिए कटिबद्ध देखा तो उसने अन्य उपाय न देखकर एक कमरे में आपको बन्द कर दिया। किन्तु भाग्यवशात् कमरे की खिड़की जो मकान से बाहर की ओर थी, वह खुली रह गयी। उस खिड़की में से आप निकलकर जंगलों में लुकते-छिपते जोधपुर पहुँचे और पिताश्री का आज्ञा पत्र आचार्यश्री के चरणों में रखकर दीक्षा के लिए प्रार्थना की। पिता की आज्ञा होने से आचार्यश्री को दीक्षा देने में किसी प्रकार की बाधा नहीं थी। शुभमुहूर्त में दीक्षा की तैयारी प्रारम्भ हुई। बालक पूनमचन्द शोभा-यात्रा के रूप में दीक्षा के लिए घोड़े पर बैठकर मध्य बाजार के बीच में से जा रहा था। आचार्य ज्ञानमलजी महाराज दीक्षास्थल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर पहुँच चुके थे। बालक पूनमचन्द के फूफाजी जोधपुर में रहते थे। उन्हें पता लगा कि बालक पूनमचन्द जालोर से भागकर यहाँ आया है और वह श्रमणधर्म ग्रहण करने जा रहा है। अतः वे शीघ्र ही आरक्षक दल के अधिकारी के पास पहुँचे और आरक्षक दल के अधिकारी को लेकर बालक पूनमचन्द जो दीक्षा लेने के लिए जा रहा था उसके घोड़े को रोक दिया और बालक को अपने घर ले आये। बुआ ने बालक को विविध दृष्टियों से रूपक देकर समझाने का प्रयास किया कि तू बालक है, अतः दीक्षा ग्रहण न कर। हमारे घर में किसी भी बात की कमी नहीं है। जोधपुर-नरेश भी हमारे पर प्रसन्न हैं। फिर तू संयम क्यों ले रहा है? बालक पूनमचन्द ने कहा बुआजी, दीक्षा किसी वस्तु की कमी के कारण नहीं ली जाती। जो किसी की कमी के कारण दीक्षा लेता है वह दीक्षा का आनन्द प्राप्त नहीं कर सकता। बुभुक्षु दीक्षा का अधिकारी नहीं, किन्तु सच्चा मुमुक्षु ही दीक्षा लेता है। आप चाहे कितना भी प्रयास करें तथापि मैं संसार में न रहूँगा और दीक्षा ग्रहण कर जैन श्रमण बनूँगा। तथापि मोह के कारण बुआ ने उसे कमरे में बन्द कर दिया और द्वार तथा खिड़कियों के ताले लगवा दिये। एक महीने तक वह कमरे में बन्द रहा। किन्तु एक दिन बुआ एक खिड़की का ताला लगाना भूल गयी थी। अतः उस खिड़की के रास्ते से बालक पूनम घर से बाहर निकल गया और लुकता-छिपता जालोर पहुँच गया और अपनी बहन तुलसाजी को उन्होंने अपने हृदय की बात कही। बहन तुलसी ने कहा— भाई, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करती-करती परेशान हो गयी हूँ। पता नहीं तुम्हारी दीक्षा कब होगी। आचार्यप्रवर अभी यहाँ आये हुए हैं। अतः मैं पिता को कहकर दीक्षा ग्रहण करती हूँ। पिता की अनुमति से पुनः दोनों भाई-बहन दीक्षा के लिए तैयार हुए और ज्यों ही दीक्षा के लिए वे नगर के द्वार पर पहुँचे त्यों ही काका का पुत्र जो कोतवाल था, वह वहाँ आ पहुँचा और बालक पूनम का हाथ पकड़कर अपने घर ले चला। सभी इनकार होते रहे, किन्तु उसने किसी की भी न सुनी। बहन तुलसी ने वहीं पर सत्याग्रह कर दिया कि अब मैं पुनः घर नहीं जाऊँगी। अतः विवश होकर बहन तुलसी को उसी दिन दीक्षा देने की अनुमति प्रदान की। बालक पूनम ने भी अत्यधिक आग्रह किया और कोतवाल का कठोर दिल पिघल गया और उसने कहा—तू जालोर में तो दीक्षा नहीं ले सकता। यदि तुझे दीक्षा लेनी ही है तो जालोर के अतिरिक्त कहीं पर भी दीक्षा ले सकेगा। तीन वर्ष तक मैं तेरी हर दृष्टि से परीक्षा कर चुका। अतः तुझे मैं अब अनुमति देता हूँ। बालक पूनम ने अपने भ्राता कोतवाल की बात स्वीकार कर ली और जालोर से २०-२५ मील दूर भँवरानी ग्राम में बड़े ही उत्साह के साथ आपकी दीक्षा सम्पन्न हुई। दीक्षा का दिन वि० संवत् १९०६ माघ शुक्ला नवमी मंगलवार था। इस प्रकार ग्यारह वर्ष की उम्र में वैराग्य भावना जागृत हुई थी किन्तु तीन वर्ष तक विविध बाधाओं को सहन करने के पश्चात् चौदह वर्ष की उम्र में आपकी दीक्षा सम्पन्न हुई। आपने आचार्यश्री के सान्निध्य में आगम और दर्शन का गम्भीर अध्ययन किया। आपका रूप पूनम के चाँद की तरह सुहावना था। आपके रूप और प्रतिभा पर मुग्ध होकर एक यति ने आपसे निवेदन किया कि स्थानकवासी परम्परा के श्रमणों को अत्यधिक कष्ट उठाना पड़ता है। न उन्हें समय पर खाने को मिलता है और न सुन्दर भवन ही मिलते हैं। आपका शरीर बहुत ही सुकुमार है, वह इन सभी कष्टों को सहन करने में अक्षम है। एतदर्थ मेरा नम्र निवेदन है कि आप यति बन जायँ तो मैं आपको यतियों का श्रीपूज्य बना दूँगा। यतियों का श्रीपूज्य बनना बहुत ही भाग्य की निशानी है। क्योंकि श्रीपूज्य के पास लाखों-करोड़ों की सम्पत्ति होती है, उनके पास अधिकार होते हैं। वे जमीन पर पैर भी नहीं रखते। चलते समय उनके पैरों के नीचे पावडे बिछा दिये जाते हैं और खाने के लिए बढ़िया से बढ़िया मन के अनुकूल पदार्थ मिलते हैं। जीवन की प्रत्येक सुविधा उन्हें उपलब्ध है।

मुनि पूनमचन्दजी ने यति को कहा—यतिवर, मेरे स्वयं के घर में कौनसी कमी थी? यदि मुझे खाना-पीना और मौज-मजा ही करना होता तो फिर साधु क्यों बनता? साधु बनकर इस प्रकार का संकल्प करना ही मन की दुर्बलता है। मैं साधना के महापथ पर वीर सेनानी की तरह निरन्तर आगे बढ़ूँगा। शरीर भले ही मेरा कोमल हो, किन्तु मन मेरा दृढ़ है। मैं तो तुम्हें भी प्रेरणा देता हूँ कि भौतिकवाद की चकाचौंध में साधना को विस्मृत होकर आत्मवंचना न करो।

यति के पास कोई उत्तर नहीं था। वह नीचा सिर किये हुए वहाँ से चल दिया। आपश्री ने प्रवचन-कला में विशेष दक्षता प्राप्त की। आपश्री के प्रवचनों में आगम के गहन रहस्य सुगम रीति से व्यक्त होते थे। कठिन से कठिनतर विषय को भी आप सरल, सुबोध रीति से प्रस्तुत करते थे जिसे सुनकर श्रोता मन्त्रमुग्ध हो जाते थे। आपश्री ने जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर, कोटा, ब्यावर, पाली, शहापुरा, अजमेर, किसनगढ़, फलौदी, जालोर, बगड़ुँदा, कूचामण, समदडी, पंचभद्रा, प्रभृति क्षेत्रों में वर्षावास किये। आप जहाँ भी पधारे वहाँ पर धर्म की अत्यधिक प्रभावना हुई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपश्री के मानमलजी महाराज, नवलमलजी महाराज, ज्येष्ठमलजी महाराज, दयालचन्दजी महाराज, नेमीचन्दजी महाराज, पन्नालालजी महाराज और ताराचन्दजी महाराज—ये सात शिष्य थे जो सप्तर्षि की तरह अत्यन्त प्रभावशाली हुए ।

आचार्य पूनमचन्दजी महाराज के प्रथम शिष्य मानमलजी महाराज थे । उनकी जन्मस्थली गढ़जालोर थी । वे लूणिया परिवार के थे । उन्होंने अपनी माँ और बहन के साथ आर्हती दीक्षा ग्रहण की थी । उनके शिष्य बुधमलजी महाराज थे, जो कवि, वक्ता और लेखक थे ।

आचार्यश्री के द्वितीय शिष्य नवलमलजी महाराज थे, जो एक विलक्षण मेधा के धनी थे । किन्तु आपका पाली में लघुवय में ही स्वर्गवास हो गया ।

आचार्यश्री के तीसरे शिष्य ज्येष्ठमलजी महाराज थे जो महान् चमत्कारी थे । उनका परिचय स्वतन्त्र रूप से अगले पृष्ठों में दिया गया है । ज्येष्ठमलजी महाराज के दो शिष्य थे । प्रथम शिष्य नेणचन्दजी महाराज थे जो समदडी के निवासी और लुँकड परिवार के थे । आपका अध्ययन संस्कृत और प्राकृत भाषा के साथ आगम साहित्य का बहुत ही सुन्दर था । आपकी प्रवचनकला चित्ताकर्षक थी । आपश्री के द्वितीय शिष्य तपस्वी श्री हिन्दूमलजी महाराज थे । इनकी जन्मस्थली गढ़सिवाना में थी । इन्होंने अपने भरे-पूरे परिवार को छोड़कर दीक्षा ग्रहण की थी और जिस दिन दीक्षा ग्रहण की उसी दिन से पाँच विगयों का परित्याग कर दिया और उसके साथ ही उत्कृष्ट तप भी करते रहते थे और पारणे में वही रूखी रोटी और छाछ ग्रहण करते थे ।

आचार्यश्री के चतुर्थ शिष्य दयालचन्दजी महाराज थे । आप मजल (मारवाड) के निवासी थे । मुथा परिवार में आपका जन्म हुआ था । नौ वर्ष की लघुवय में पूज्यश्री के पास वि० संवत् १९३१ में गोगुन्दा (मेवाड) में दीक्षा ग्रहण की । आपका स्वभाव बड़ा ही मधुर था । आपके हेमराजजी महाराज शिष्यरत्न थे जिनकी जन्मस्थली पाली—मारवाड़ थी । आप जाति से मालाकार थे । आपने वि० संवत् १९६० में दीक्षा ग्रहण की थी । आप ओजस्वी वक्ता थे । आपका गंभीर घोष श्रवण कर श्रोता झूम उठते थे । आपका स्वभाव बहुत ही मिलनसार था । आपश्री ने गढ़जालोर में एक विराट् पुस्तकालय की संस्थापना की थी । पर, खेद है कि श्रावकों की पुस्तकों के प्रति उपेक्षा होने से वे सारे बहुमूल्य ग्रन्थ दीमकों के उदर में समा गये । पंडित मुनिश्री हेमराज महाराज का वि० संवत् १९९७ में दुन्दाड़ा ग्राम में संथारापूर्वक स्वर्गवास हुआ और वि० संवत् २००० में दयालचन्दजी महाराज साहब का गढ़ जालोर में स्वर्गवास हुआ ।

आचार्यश्री के पाँचवें शिष्य कविवर नेमीचन्दजी महाराज थे । आपका विशेष परिचय अगले लेख में स्वतन्त्र रूप से दिया है । आपश्री के तीन शिष्य थे—सबसे बड़े वर्दीचन्दजी महाराज थे । वे मेवाड के बगडुंडा गाँव के निवासी थे । आपने लघु वय में दीक्षा ग्रहण की । वि० संवत् १९५६ में पंजाब के प्रसिद्ध सन्त मायारामजी महाराज मेवाड़ पधारे । कविवर नेमीचन्दजी महाराज के साथ उनका बहुत ही मधुर सम्बन्ध रहा । वर्दीचन्दजी महाराज की इच्छा मायारामजी महाराज के साथ पंजाब क्षेत्र स्पर्शने की हुई । कविवर्य नेमीचन्दजी महाराज ने उन्हें सहर्ष अनुमति दी । वे पंजाब में पधारे । उनके शिष्य शेरे-पंजाब प्रेमचन्दजी महाराज हुए जो प्रसिद्ध वक्ता और विचारक थे । उनकी प्रवचन-कला बहुत ही अद्भुत थी । जब वे दहाड़ते थे तो श्रोता दंग हो जाते थे ।

कविवर्य नेमीचन्दजी महाराज के द्वितीय शिष्य हंसराजजी महाराज थे । वे मेवाड के देवास ग्राम के निवासी थे और बाफना परिवार के थे ।

आपकी प्रकृति बहुत ही भद्र थी । आप महान् तपस्वी थे, आपने अनेक बार साठ उपवास किये, कभी इकावन किये, कभी मासखमण किये । वि० संवत् में आपका स्वर्गवास हुआ । आपके तीसरे शिष्य दौलतरामजी महाराज थे जो देलवाड़ा के निवासी थे और आपका जन्म लोढा परिवार में हुआ था । आप जपयोगी सन्त थे ।

आचार्यश्री के छठे शिष्य पन्नालालजी महाराज थे । आप गोगुन्दा—मेवाड़ के निवासी थे । लोढा परिवार में आपका जन्म हुआ था । वि० संवत् १९४२ में आपने दीक्षा ग्रहण की थी । आपका गला बहुत ही मधुर था । कविवर नेमीचन्दजी और आप दोनों गुरुभ्राता जब मिलकर गाते थे तो रात्रि के शांत वातावरण में आपकी आवाज २-३ मील तक पहुँचती थी । आपश्री का स्वर्गवास मारवाड़ के राणावास ग्राम में हुआ । आपके सुशिष्य तपस्वी प्रेमचन्दजी महाराज थे जो उत्कृष्ट तपस्वी थे । भीष्म ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की चिलचिलाती धूप में आप आतापना ग्रहण करते थे और जाड़े में तन को कँपाने वाली सनसनाती सर्दी में रात्रि के अन्दर वे वस्त्रों को हटाकर शीत-आतापना लेते थे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आप आगम साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् थे। वि० संवत् १९८३ में मोकलसर ग्राम में आपका स्वर्गवास हुआ। आपके सुशिष्य उत्तमचन्दजी महाराज थे जो मेवाड़ के कपासन ग्राम के सन्निकट एक लघु ग्राम के निवासी थे। आप जाति से मालाकार थे। वि० संवत् १९५६ में आपने दीक्षा ग्रहण की। आप आगम साहित्य व थोकड़े साहित्य के अच्छे ज्ञाता थे। आपकी प्रकृति बहुत ही भद्र थी। आपका प्रवचन मधुर होता था। वि० संवत् २००० में मोकलसर ग्राम में आपका स्वर्गवास हुआ। आपश्री के दो शिष्य थे—जुवारमलजी महाराज और वाघमलजी महाराज, जिनकी क्रमशः जन्म-भूमि वागावास और पाटोदी थी। जुवारमलजी महाराज तपस्वी थे। आपकी प्रकृति सरल और भद्र थी। वाघमलजी महाराज को थोकड़ों का बहुत ही अच्छा परिज्ञान था। आपको सैकड़ों थोकड़े कण्ठस्थ थे।

आचार्यश्री के सातवें शिष्य ताराचन्दजी महाराज थे, जिनका परिचय अगले पृष्ठों में दिया गया है। आपश्री के सुशिष्य उपाध्याय पुष्कर मुनिजी महाराज, पंडित हीरामुनिजी महाराज और तपस्वी भैरूलालजी महाराज ये तीन शिष्य हैं। उपाध्यायश्री के देवेन्द्रमुनि, शांतिमुनि, गणेशमुनि रमेशमुनि और दिनेशमुनि शिष्य हैं और देवेन्द्र-मुनि के राजेन्द्रमुनि तथा गणेशमुनि के जिनेन्द्रमुनि और प्रवीणमुनि शिष्य हैं। इनका परिचय वर्तमान युग के सन्त-सती वृन्द के परिचय लेख में दिया गया है।

पंडित प्रवर श्री पूनमचन्दजी महाराज महान प्रतिभासम्पन्न थे। विक्रम संवत् १९५० में माघ कृष्णा सप्तमी को जोधपुर में चतुर्विध संघ ने आपश्री को योग्य समझ कर आचार्य पद प्रदान किया। आचार्यश्री ज्ञानमलजी महाराज का स्वर्गवास संवत् १९३० में हुआ था। उसके पश्चात् बीस वर्ष तक आचार्य पद रिक्त रहा, यद्यपि आपश्री आचार्य की तरह संघ का संचालन करते रहे। किन्तु पारस्परिक मतभेद की स्थिति के कारण एकमत से निर्णय नहीं हुआ था। इसका मूल कारण यह भी था कि आचार्यप्रवर ज्ञानमलजी महाराज ने अपना उत्तराधिकारी पूर्वघोषित नहीं किया था जिसके फलस्वरूप यह स्थिति उत्पन्न हुई थी। किन्तु आपश्री संघ का कुशल संचालन करते रहे जिससे प्रभावित होकर अन्त में संघ ने आपश्री को आचार्य चुना।

वि० सं० १९५२ का चातुर्मास आचार्यप्रवर का अपनी जन्मभूमि गढ़जालोर में था। प्रस्तुत वर्षावास में आचार्यश्री के तेजस्वी व्यक्तित्व और कृतित्व से प्रभावित होकर शताधिक व्यक्ति जैनधर्म के अभिमुख हुए। जैनधर्म और जैन संस्कृति में पण्डित-मरण का अत्यधिक महत्व है। प्रतिपल प्रतिक्षण साधक की यही प्रशस्त भावना रहती है कि वह दिन कब होगा जब मैं पण्डित-मरण को प्राप्त करूँगा। आचार्यप्रवर जागरूक थे। शरीर में कुछ व्याधि समुत्पन्न होने पर आचार्यश्री ने वीर सेनानी की तरह मुस्कराते हुए संल्लेखना सहित संथारा ग्रहण किया। ग्यारह दिन का संथारा आया और सं० १९५२ के भाद्रपद पूर्णिमा के दिन आपने समाधिपूर्वक स्वर्ग की राह ली।

सहस्राधिक भावुक भक्तगण जय-जय के गगनभेदी नारों से चतुर्दिशाओं को मुखरित करते हुए शोभायात्रा की तैयारी करने लगे। जनता ने श्रद्धावश एक भव्य विमान का निर्माण किया था। उसमें आचार्यप्रवर का विमुक्त शरीर रखा गया था। सभी उसे लेकर श्मशान पहुँचे। शरीर का दाहसंस्कार करने के लिए चन्दन की चिता लगायी गयी। ज्योतिपुञ्ज का वह विमुक्त शरीर पुनः ज्योति से प्रज्वलित हो उठा। अगरु की सुगन्ध से वातावरण महक उठा। घी, कपूर और नारियलों का प्रज्वलन वातावरण को सुरभित कर रहा था। लोगों ने देखा आचार्यप्रवर का दिव्य देह विमान सहित जल गया है किन्तु विमान पर जो तुर्रा था वह अग्निस्नान करने पर भी प्रह्लाद की तरह जला नहीं है। श्रद्धालु श्रावकगण वीर हनुमान की तरह उसे लेने के लिए लपके किन्तु वह इन्द्र धनुष की तरह रंग-बिरंगे रंग परिवर्तन करता हुआ पक्षी की तरह उड़कर अनन्त गगन में विलीन हो गया। अद्भुत आश्चर्य से सभी विस्मित थे।

वहाँ से सभी श्रावकगण स्नान के लिए जलकुंड पर पहुँचे। वहाँ का जल केशर की तरह रंगीन, गुलाबजल की तरह सुगन्धित और गंगाजल की तरह निर्मल व शीतल था जिसे देखकर सभी चकित हो गये और उनके हृत्तन्त्री के सुकुमार तार झनझना उठे। आश्चर्य ! महान् आश्चर्य !! धन्य है आचार्यश्री को जिन्होंने स्वर्ग में पधार करके भी नास्तिकों को आस्तिक बनाया। प्रस्तुत घटना प्रत्यक्षद्रष्टा श्रावकों के मुँह से मैंने सुनी। वस्तुतः आचार्यप्रवर का जीवन महान् था। वे महान् प्रभावशाली आचार्य थे। और उन्होंने अपने आचार्यकाल में हर दृष्टि से शासन का विकास करने का प्रयत्न किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org